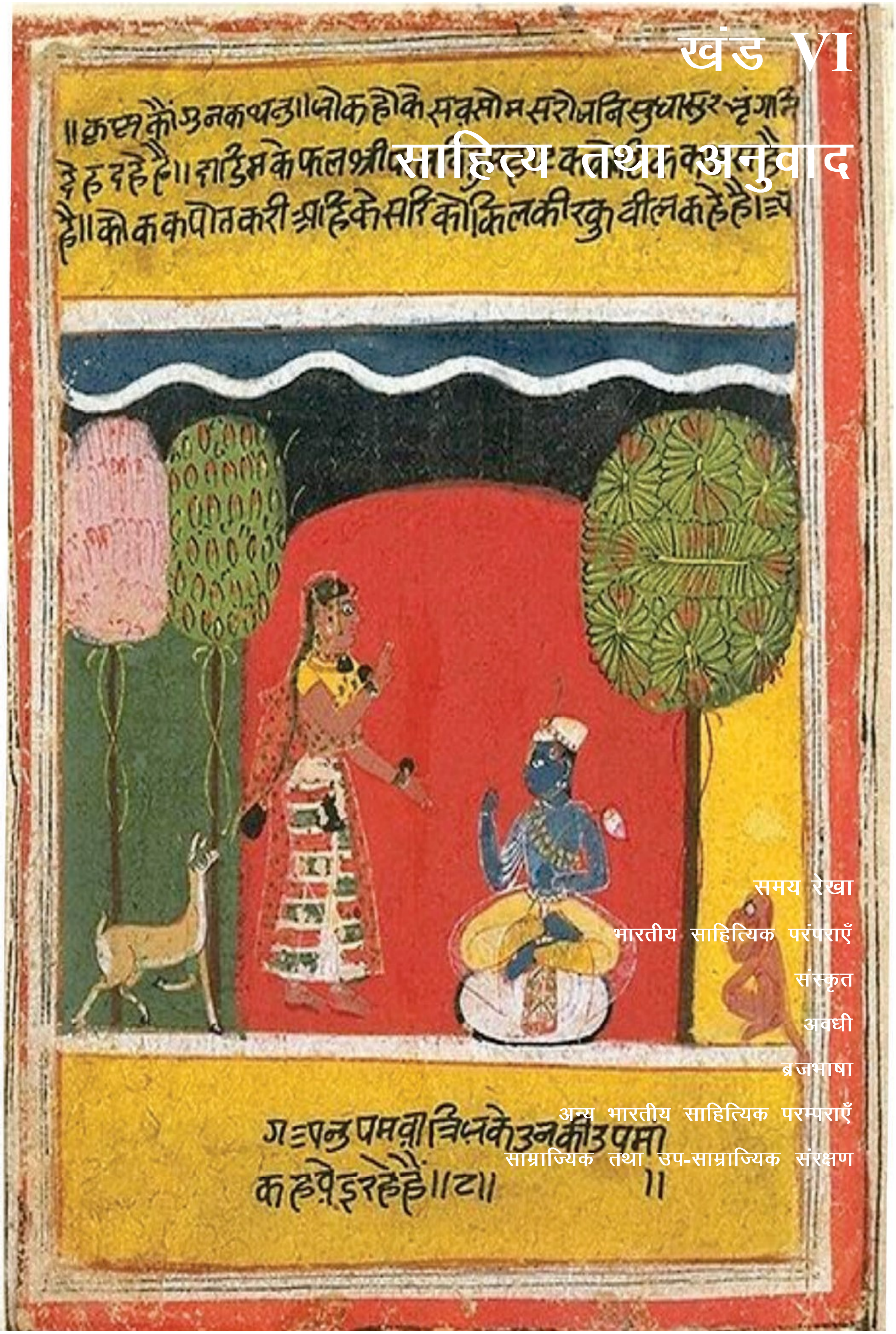

खंड VI

साहित्य तथा अनुवाद

समय रेखा

भारतीय साहित्यिक परंपराएँ

संस्कृत

अवधी

ब्रजभाषा

अन्य भारतीय साहित्यिक परम्पराएँ

साम्राज्यिक तथा उप-साम्राज्यिक संरक्षण

रसिकप्रिया में राधा और कृष्ण, मालवा, भारत, *circa* 1634

चित्रकार	:	अज्ञात
फोटोग्राफ स्रोत	:	विक्टोरिया तथा एलबर्ट म्यूज़ियम
स्रोत	:	https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Radha_ and_ Krishna_ in_ Rasikapriya,_ ca1634.jpg

इकाई 18 साहित्यिक संस्कृति तथा राजकीय संरक्षण*

संरचना

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 भारतीय साहित्यिक परम्परा के अध्ययन संबंधी दृष्टिकोण

  18.2.1 भारतीय साहित्यिक परम्परा के क्षेत्रीयकरण पर शेल्डन पोलॉक के विचार

  18.2.2 भारतीय साहित्यिक परंपरा पर एलिसन बुश के विचार

  18.2.3 सांस्कृतिक अन्तःक्रिया पर ऑड्री ट्रश्के के विचार

18.3 भारतीय साहित्यिक परम्परा की विशेषताएँ

  18.3.1 राजनीतिक इच्छा-शक्ति तथा भाषा का क्षेत्रीयकरण

  18.3.2 प्रसार और पारगम्य सीमाएँ

  18.3.3 संकरण (Hybridity)

  18.3.4 संस्कृत ग्रंथों का क्षेत्रीयकरण

  18.3.5 भक्ति परंपरा तथा क्षेत्रीय साहित्य

18.4 संस्कृत तथा मुग़ल संरक्षण

18.5 भारतीय साहित्यिक परंपरा को प्राप्त संरक्षण

  18.5.1 मुग़ल दरबार में संरक्षण

  18.5.2 उप-साम्राज्यिक स्तर पर संरक्षण

18.6 क्षेत्रीय साहित्यिक परंपरा

  18.6.1 क्षेत्रीय साहित्यिक परंपराः अवधी

  18.6.2 क्षेत्रीय साहित्यिक परंपराः ब्रजभाषा

  18.6.3 अन्य भारतीय साहित्यिक परम्पराएँ

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.10 संदर्भ ग्रंथ

18.11 शैक्षणिक वीडियो

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- भारतीय साहित्यिक परम्पराओं के अध्ययन के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ पाएँगे,
- भारतीय साहित्यिक परम्पराओं की विशेषताओं को पहचान पाएँगे,

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली

- संस्कृत साहित्य को उपलब्ध मुग़ल संरक्षण के स्वरूप को समझ पाएँगे,
- मुग़ल दरबार में भारतीय साहित्यिक परम्परा को प्रदत्त संरक्षण पर विचार कर पाएँगे,
- सोलहवीं शताब्दी के दौरान क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा के विकास का आकलन कर पाएँगे,
- भारतीय साहित्यिक परम्परा के विकास में भक्ति की भूमिका का परीक्षण कर पाएँगे, और
- शास्त्रीय संस्कृत परम्परा के क्षेत्रीय परंपराओं में आत्मसातीकरण की प्रक्रिया तथा विभिन्न विधाओं की नई शैलियों के उभार का मूल्यांकन कर पाएँगे।

18.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई मुग़ल काल की साहित्यिक उपलब्धियों के पुनर्मूल्यांकन का प्रयास करती है। यहाँ तीन बातें महत्वपूर्ण हैं: a) किस सीमा तक संस्कृत परम्परा का पतन हुआ; b) संस्कृत के विद्वानों को किस सीमा तक संरक्षण प्राप्त हुआ; तथा c) उप-साम्राज्यिक स्तर पर संस्कृत तथा क्षेत्रीय परम्परा को प्राप्त संरक्षण की प्रकृति। लेकिन, शाही दरबार में संस्कृत ग्रंथों के फ़ारसी में अनुवाद की बृहद-परियोजना को इस चर्चा से बाहर रखा गया है क्योंकि हम पहले ही **इकाई 1** में अकबर के शाही प्रतिष्ठान में *मकतब ख़ाना* की गतिविधियों के संदर्भ में इस विषय की चर्चा कर चुके हैं।

स्मरण रहे, हमारे **पाठ्यक्रम 107** में हम राजनीतिक पटल पर में तुर्कों के उदय होने से पहले ही संस्कृत के सामान्य पतन की चर्चा कर चुके हैं जो मुख्यतः क्षेत्रीय भाषाओं के उदय का परिणाम था। प्रस्तुत इकाई का लक्ष्य सोलहवीं शताब्दी में इस प्रक्रिया के विस्तार पर चर्चा की जाएगी, विशेषकर मुग़लों के अधीन।

यह इकाई इतिहासकारों के बीच 'सहस्त्राब्दिक' संस्कृत साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परंपरा के बिखरने को लेकर व्याप्त व्यापक वाद-विवाद को समझने का प्रयास भी करती है। तुर्क तथा मुग़ल शक्ति के सर्वोच्च होने से फ़ारसी का वर्चस्व बढ़ा और क्रमिक रूप से संस्कृत साहित्यिक परंपरा धूमिल हो गई। लेकिन, हम पाते हैं कि कश्मीर, गुजरात तथा बनारस अभी भी संस्कृत शिक्षण के केंद्र बने हुए थे, यद्यपि अब यह दरबार की भाषा नहीं रह गई थी। भारतीय-मुस्लिम संरक्षण ने क्षेत्रीय-भाषा परंपरा के विकास में, विशेष रूप से ब्रजभाषा के, महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यद्यपि फ़ारसी, तुर्कों के उदय के बाद से ही अभिजात्यों की प्रमुख भाषा रही थी, लेकिन फिर भी *हिंदवी* का महत्व बना रहा तथा स्थानीय स्तर पर सभी प्रशासनिक और राजस्व लेन-देन/दस्तावेज़ों की भाषा के रूप में 1582 तक यह प्रयुक्त होती रही, जब अंततः अकबर ने फ़ारसी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया और *परगना* स्तर पर भी सभी दस्तावेज़ों को फ़ारसी में रखे जाने को अनिवार्य कर दिया गया; तथापि गाँव के स्तर पर अब भी राजस्व के लेखाओं को *हिंदवी* में ही लिखा जाता रहा था।

लेकिन, क्षेत्रीय-भाषा साहित्य का विकास एक रेखीय नहीं रहा है; यह कई प्रकार के अनुभवों से होकर गुज़रा। सामान्य रूप से इन क्षेत्रीय-भाषा के कवियों/लेखकों की मुख्य प्रेरणा या उनके द्वारा चुने गए विषय या तो पौराणिक थे या ये प्रशस्ति-काव्य थे।

मध्यकाल में, भाषाओं को किसी भौगोलिक दायरे में बाँधना मुश्किल है, इसके बजाय बहुविविधता सामान्य प्रचलन में थी। भाषायी सीमाएँ लचीली थीं, विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत होने, और लचीला व गतिशील होने के साथ-साथ भाषाई सीमाओं से परे, एक दूसरी परम्पराओं से ग्रहण करना एक आम प्रवृत्ति थी।

इस इकाई में, हम बहुधा 'सार्वदेशिक' (cosmopolitan) तथा 'क्षेत्रीय' (vernacular) शब्दों का प्रयोग करेंगे। पहले यहाँ 'सार्वदेशिक' तथा 'क्षेत्रीय' की भारतीय साहित्यिक परम्परा के संदर्भ में व्याख्या कर लेना उचित रहेगा। 'सार्वदेशिक' शब्द का तात्पर्य उस तथ्य से है जिसका देश तथा काल के संदर्भ में अत्यंत विस्तृत फैलाव हो और जो धार्मिक तथा क्षेत्रीय सीमाओं के पार सर्वत्र विस्तृत हो; वहीं 'क्षेत्रीय' का तात्पर्य उससे है जो सीमित देश-काल में सिमटी हो, और अक्सर किसी सीमित स्थान/क्षेत्र से बंधी हुई हो।

18.2 भारतीय साहित्यिक परम्परा के अध्ययन संबंधी दृष्टिकोण

'सार्वदेशिक' तथा 'क्षेत्रीय' श्रेणियां परस्पर अनन्य नहीं हैं। कुछ प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं ने 'सार्वदेशिकता' का चरित्र भी ग्रहण किया। ब्रज और अवधी थोड़े से समय में ही 'अपने क्षेत्रीय संसारों से निकल, 'सार्वदेशिक' रूप में उभरीं। इसी प्रकार, सभी 'सार्वदेशिक' भाषाएँ 'क्षेत्रीय' प्रक्रियाओं से होकर नहीं गुज़री थीं। यह 'सार्वदेशिक' संस्कृत के संदर्भ में पूरी तरह सत्य है जो कभी भी क्षेत्रीयता के चरण से गुजरी प्रतीत नहीं होती है। पोलॉक (फरवरी 1998: 25) तर्क देते हैं, 'जिस प्रकार सार्वदेशिक, क्षेत्रीयता से होने वाले सांस्कृतिक प्रवाह से निर्मित होता है उसी प्रकार सार्वदेशिक से कुछ ग्रहण कर क्षेत्रीयता स्वयं को निर्मित करती है ...' एक 'सार्वदेशिक' सार्वभौम शाही राज्य सांस्कृतिक संपर्क तथा सौंदर्यबोध की शैली का उपभोग करता था, उसने राजनीतिक शब्दावली तथा संस्कृति को आकार भी दिया' (पोलॉक, फरवरी 1998: 15)।

'सार्वदेशिकता' बनाम 'क्षेत्रीयता' के प्रकाश में, प्रस्तुत भाग मध्यकालीन समय में भारतीय साहित्यिक परंपराओं के उदय के संदर्भ में विद्वानों के मध्य प्रचलित तीन मुख्य दृष्टिकोणों पर केंद्रित रहेगा। यहाँ हमारा मुख्य ध्यान उत्तर भारत में भारतीय साहित्यिक परंपराओं के विकास पर रहेगा क्योंकि हम दक्षिण भारत तथा दक्खन में क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की चर्चा पहले ही अपने पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 107** में कर चुके हैं।

18.2.1 भारतीय साहित्यिक परम्परा के क्षेत्रीयकरण पर शेल्डन पोलॉक के विचार

पूर्व मध्यकाल में स्थानीय क्षेत्रीय बोलियों के उदय को शेल्डन पोलॉक ने भाषाओं के 'क्षेत्रीयकरण' के रूप में देखा है, परिवर्तन की 'ऐसी प्रक्रिया जिसने पिछली सहस्राब्दी की सार्वभौमिक व्यवस्थाओं, स्वरूपों तथा व्यवहारों में नया कुछ जोड़ा तथा धीरे-धीरे इसे स्थानीय स्वरूपों से प्रतिस्थापित कर दिया' (पोलॉक ग्रीष्म 1998: 41)। उनके अनुसार, 'साक्षरीकरण' (Literalization; स्थानीय भाषाओं का लेखन के क्षेत्र में प्रवेश) की प्रक्रिया के माध्यम से सृजित साहित्य ने समरूपता और एकत्व को जन्म दिया और अंततः यह 'अधिक्षेत्रीयकरण' और कुछ मामलों में 'नृजातीयकरण' में सफल हुआ। इस प्रक्रिया के माध्यम से, पोलॉक (ग्रीष्म, 1998: 42) का तर्क है, 'क्षेत्रीय साहित्यिक संस्कृतियों ने, क्रमिक रूप से, पूर्व में प्रचलित रही परा-स्थानीय संहिताओं, सौंदर्यबोध के स्वरूपों और भू-सांस्कृतिक दायरों को अपने में समाहित कर लिया तथा उनका स्थान ग्रहण कर लिया।' पोलॉक तर्क देते हैं, इस क्षेत्रीयकरण ने 'नई क्षेत्रीय दुनियाओं' का सृजन किया। यह भाषायी क्षेत्र, सार्वदेशिक संस्कृत (जो मध्य एशिया से श्रीलंका, अफगानिस्तान से अन्नाम तक पहुंच रखती थी) के विपरीत, अपनी पहुंच में सीमित थे, वैश्विक, परा-क्षेत्रीय या 'सार्वदेशिक' नहीं थे। प्रारंभिक रूप से, इन भाषाओं का प्रयोग स्थानीय अभिलेखन में हुआ तथा स्थानीय अभिलेख उनमें चिन्हित किए गए, किसी साहित्यिक ग्रंथ के सामने आने से बहुत पहले ही। कन्नड़ के मामले में, पहला अभिलेखन पाँचवीं शताब्दी का है तथा लगभग चार शताब्दियों के बाद, नौवीं शताब्दी में, राष्ट्रकूटों के दरबार में श्री विजय द्वारा रचित पहला साहित्यिक ग्रंथ, *कविराजमार्ग*, लगभग 850 में, ऐसा ग्रंथ जो संस्कृत ग्रंथ *काव्यादर्श* पर आधारित था, सामने आया। इस तरह, पहला प्रयास, 'भाषा-विज्ञान शास्त्र' (Language fo Science) को स्थापित करना था, जो स्वयं को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने की ओर एक कदम था। अगली मुख्य विशेषता थी, स्वयं को स्थानीय भू-सांस्कृतिक परिदृश्य में स्थान दिलाने का प्रयास। उत्तर भारत में, पन्द्रहवीं शताब्दी तक 'ग़ैर-मुस्लिम' राजदरबारों का क्षेत्रीयकरण हो चुका था। पंद्रहवीं शताब्दी तक ग्वालियर के तोमर दरबार में ब्रज प्रधानता प्राप्त कर चुकी थी; और 'पनुःश्च' यहाँ, संस्कृत मुहावरों तथा ग्रंथों को समकालीन सरोकारों तथा परिस्थितियों के मुताबिक से 'पुनर्प्रयोग' में लाया गया था। विष्णुदास की *महाभारत* (1435) तथा *रामायणकथा* इसी दिशा में एक प्रयास था। 'संस्कृत के सांस्कृतिक अभिनियमों तथा गतिविधियों के संदर्भ के भीतर ही, क्षेत्रीय भाषा का चुनाव अपने साथ भाषायी अनुशासन के व्यवहार की कई प्रकार की प्रतिबद्धताएँ (उदाहरणार्थ, व्याकरणबद्ध किए जाने की प्रक्रिया) तथा पुनर्सृजन की पद्धतियाँ (विशेषकर लेखन) लेकर आता था जो भाषा के एकीकरण,

मानकीकरण तथा सर्वप्रथम ''क्षेत्रीय-भाषा'' की नियम-संहिता के दूसरी भाषाओं से अंतर को सुनिश्चित करता था' (पोलॉक, ग्रीष्म 1998: 58)।

यह प्रवृत्ति, पोलॉक का तर्क है, कालगत भिन्नता दिर्शाती है: गुजराती में, इस तरह का साहित्यिक सृजन 12वीं शताब्दी में शुरू हुआ; असमी में 14वीं शताब्दी में; उड़िया तथा मलयाली में 15वीं शताब्दी में, अवधी में 14वीं शताब्दी में, जबकि ब्रज में 15वीं-16वीं शताब्दी में, तथापि, यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में समान रूप से नज़र आती है। पोलॉक (ग्रीष्म 1998: 54) का मानना है, 'अभिलेखीय तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत मॉडलों को अपनाकर, *महाकाव्यों* के देश-काल को नए नक़्शों में ढालकर, नए सामाजिक-पाठों में अस्तित्वमान उन समुदायों को संबोधित कर जो इन नए भाषा-क्षेत्रीय स्थानों में जगह पाते तथा इन नए क्षेत्रीय ग्रंथों को पढ़कर/सुनकर स्वयं को पुनर्सृजित करते; द्वितीय सहस्राब्दी की शुरुआत में दरबारी विद्वानों ने दक्षिण एशिया में एक बिल्कुल ही नए तरह के सांस्कृतिक स्वरूप को जन्म दिया। यद्यपि संस्कृत की सार्वदेशिक संहिता (Cosmopoliton Code) समाप्त नहीं हुई ... साहित्यिक दायरे में तथा राजनीतिक अभिव्यक्ति में इसका नाटकीय पतन हुआ।' पोलॉक (ग्रीष्म 1998: 57) का तर्क है कि इस क्षेत्रीयकरण की तीन विशेषताएँ सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में आम थीं: 'सांस्कृतिक दायरे की नई परिभाषा, स्थानीय भाषा में साहित्यिक सृजन के लिए अधिरोपित मॉडलों का महत्व, और क्षेत्रीयता के सृजन में राजदरबारों की दिलचस्पी'। इसके अतिरिक्त, पवित्र संस्कृत धर्म-ग्रंथों का कदाचित् ही अनुवाद किया गया, इसके बजाय क्षेत्रीय भाषाओं में ही मौलिक शास्त्रों को रचा गया: शैव *वचन* (कन्नड़ में), तमिल वेद (*तिरुमलाइ*)। कन्नड़ के संदर्भ में पोलॉक (फ़रवरी 1998: 25) तर्क देते हैं, 'कन्नड़ अपनी इस नई स्थिति को ('सार्वदेशिक' भाषा के स्तर को) प्राप्त नहीं कर पाती जब तक कि यह संस्कृत के ज्ञानशास्त्रीय दर्जे तथा भाषा-शास्त्रीय युक्तियों की प्रतिष्ठा (उदाहरणार्थ, *लक्षणग्रंथ,* (नियम-निर्धारक ग्रंथ), दोनों को धारण नहीं करती।'

18.2.2 भारतीय साहित्यिक परंपरा पर एलिसन बुश के विचार

ओरछा के बुंदेला शासकों के दरबार में ब्रजभाषा को प्राप्त राजसी संरक्षण तथा दरबारी ***रीति काव्य*** का विश्लेषण करते हुए एलिसन बुश तर्क देती हैं कि औपनिवेशिक काल के दौरान 'आधुनिकता' तथा 'राष्ट्रवाद' के आवरण में भारतीय साहित्यविद् शास्त्रीय हिंदी कविता, अर्थात् ***रीति काव्य***, के जीवंत चरित्र को उचित स्थान देने में असफल रहे। यहाँ हमारा ध्यान इस बहस के इस मुद्दे में जाने का नहीं है कि किस हद तक 'पूर्व-आधुनिक' (मुग़ल-काल की) क्षेत्रीय साहित्यिक संस्कृति की महत्ता को नज़रंदाज़ करने में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की भूमिका रही है, बल्कि, हमारा ध्यान क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा की जीवंतता को, इसको प्राप्त संरक्षण के संबंध में देखने पर रहेगा।

यद्यपि विद्वानों ने अधिकांशतः *रीति काव्य* (क्षेत्रीय ब्रजभाषा में) को ख़ारिज किया है तथा उसे नीची निग़ाह से देखा है जिसमें *आचार्यत्व* तथा *मौलिकता* की कमी थी। एलिसन बुश का तर्क है कि केशवदास जैसे ब्रज लेखकों ने स्वयं को शास्त्रीय संस्कृत की शैली से अलग नहीं किया, बल्कि, उन्होंने समय की आवश्यकता के अनुसार बदलाव किए, जो इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि वे संस्कृत की सर्वोच्चता तथा मौजूदा साहित्यिक नियमों को प्रश्नांकित करने को तैयार थे। 'संक्षेप में, यह रीतिगत सौंदर्यबोध नए तथा पुराने का, ज्ञात तथा अज्ञात का, सार्वदेशिक तथा क्षेत्रीय का अनूठा मिश्रण था' (बुश 2011: 66)। बुश के अनुसार रीति काव्य इस अर्थ में अधिक अतिवादी और स्वच्छन्द था। वे स्वयं को मात्र संस्कृत ग्रंथों के प्रेषक के रूप में नहीं देखते थे बल्कि स्वयं को नई शैली की *भाषा-कविता* (क्षेत्रीय साहित्य) के सिद्धांतकार के रूप में देखते थे। ब्रज कवियों का दावा था कि उन्होंने ब्रजभाषा में 'नए काव्य-शास्त्र' को कलमबद्ध करने का बीड़ा उठाया था। केशवदास की *रसिकप्रिया*, रुद्रभट्ट की श्रृंगारतिलक का रूपांतरण है, तथापि इसमें उन्होंने काफ़ी नवीनता का समावेश किया है। इसके अतिरिक्त, केशवदास ब्रज के परिवेश को इसमें मिला देने का प्रयास करते हैं। वह संस्कृत के लक्षणों को लेते हैं और अपने नज़रिए के हिसाब से उनमें परिवर्तन करते हैं और 'युगों से चले आए भाषायी पदसोपानक्रम' को भंग करने का प्रयास करते हैं।

एलिसन बुश (2011) *रीति काव्य* के संदर्भ में साम्राज्यिक (मुगल) तथा उप-साम्राज्यिक (क्षेत्रीयः ओरछा) साहित्यिक संस्कृतियों के बीच संपर्क स्थापित करने का प्रयास करती हैं। केशवदास की साहित्यिक विद्वता को व्यक्त करते हुए वे तर्क देती हैं कि कैसे इस महाकवि ने अपने संरक्षक, ओरछा

शासकों, की ज़रूरत के मुताबिक अपनी कविता को रूपाकार दिया। वह टिप्पणी करती हैं कि केशवदास ने अपने संरक्षक ओरछा राजा को दैवीय राजा राम के रूप में पेश करने की कोशिश की और इस प्रकार मुग़ल (शाही) दरबार में ओरछा राजा की स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयास किया। केशवदास ने बादशाह जहाँगीर की प्रशंसा में प्रशस्ति-परक काव्य भी लिखा। बुश का तर्क है कि ब्रजभाषा *रीति काव्य* के ये साम्राज्यिक-उप-साम्राज्यिक संबंध, ब्रजभाषा की महत्ता की कुंजी थे। वह राजा बीरबल को मुग़ल दरबार में संभावित मध्यस्थ के रूप में पेश करती हैं। उनका कथन है कि ब्रजभाषा के कवि मुग़ल दरबार की छत्रछाया में कार्य कर रहे थे। केशवदास के लेखन का उनके शिष्यों पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा, ख़ासकर दरबारी शिष्या प्रावी पर।

रीति कवियों ने भारतीय भाषायी आचार-शास्त्र को फ़ारसी आचार-शास्त्र से लंबी चौपाई तथा पद. बंधों पर अत्यधिक ध्यान देकर अलहदा रखने का सचेतन चुनाव किया। केशव क्षेत्रीय समानार्थी शब्दों का चुनाव करते हैं, यथा धरती के लिए *भूमि* की जगह क्षेत्रीय समानार्थी 'पुहुमि' का।

बुश का तर्क है कि क्षेत्रीय भाषा उप-साम्राज्यिक दरबारों (***वतन-जागीरों*** में) में अधिक लोकप्रिय थी क्योंकि यह 'सांस्कृतिक रूप से वहाँ अधिक प्रासंगिक' थी। यहीं उन्होंने 'विधाओं की एक समृद्ध श्रृंखला को परिष्कृत' किया। उनका तर्क है कि राजपूत तथा अन्य अमीर यद्यपि मुग़ल दरबार में संवाद करने के लिए फ़ारसी का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे, अपनी *वतन-जागीरों* में वे स्थानीय बोलियों को प्रोत्साहित करते थे तथा स्थानीय प्रतिभाओं को संरक्षण प्रदान करते थे।

वहीं, भारतीय साहित्य भी फ़ारसी साहित्यविदों के बीच विशेष आकर्षण रखता था। यह इस तथ्य से जाना जा सकता है कि तुलसी की *रामचरितमानस*, *सूरसागर* तथा *प्रबोधचंद्रोदय* की संक्षिप्त रूप में फ़ारसी लिपि में नकलें तैयार की गई थीं। केशवदास की *रसिकप्रिया*, *सुंदर श्रृंगार* तथा *बिहारी सतसई* को भी *नस्तालिक़* (शुद्ध फारसी लिपि-शैली) में उतारा गया था; इस सबसे उस काल के फ़ारसी रंग में रंगे पाठकों (अभिजात्यों) को संबोधित किए जाने का संकेत मिलता है।

18.2.3 सांस्कृतिक अन्तःक्रिया पर ऑड्री ट्रश्के के विचार

ट्रश्के इस परिचर्चा को भारतीय साहित्यिक परंपराओं, विशेषकर संस्कृत को प्राप्त मुग़ल बादशाहों के संरक्षण के मुद्दे की ओर ले जाती हैं। उन्होंने संरक्षण के तंत्र और भारतीय साहित्य के सृजन पर उसके प्रभाव की व्याख्या की है। ट्रश्के का यह तर्क है कि मुगलों ने एक 'बहु-सांस्कृतिक और बहु-भाषायी साम्राज्यिक छवि' को गढ़ा था। लेकिन, मुग़ल संरक्षण का इरादा भारतीय समुदायों पर सिक्का जमाने के बजाय 'स्वयं' के लिए ही था। ट्रश्के (2016: 23) संस्कृत का 'भारतीय सीमाओं के भीतर एक महत्वपूर्ण मोर्चे के रूप में महत्व को रेखांकित करती हैं जो शाही दरबारी जीवन के एक निरंतर घटक के रूप में अपने दम पर खड़ी थी और मुग़ल शासकों के लिए एक प्रभावकारी राजनीतिक परंपरा थी।' ट्रश्के तर्क देती हैं कि सामान्यतः स्वीकृत मत के विपरीत मुग़ल सांस्कृतिक दुनिया काफ़ी जीवंत थी तथा केवल इस्लामी और फ़ारसी सांस्कृतिक परंपराओं तक ही सीमित न थी। इस प्रकार, ट्रश्के (2016: 62) के मुताबिक, यह 'मुग़ल सत्ता और संप्रभुता की कल्पना, अक्सर ही, पूरी तरह इस्लामी संस्कृति तथा फ़ारसी साहित्यक रचनाओं के सृजन के बाहर कार्यरत थी'।

यह सांस्कृतिक अन्तःक्रिया अकबर के दरबार में निर्विरोध नहीं थी। बदायूनी ने *रज़्मनामा* (*रामायण* का फारसी अनुवाद) की प्रस्तावना लिखने से इंकार कर दिया था। बदायूनी अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखी गई रज़्मनामा की प्रस्तावना के प्रति आलोचनात्मक रुख रखता था जो उसके मुताबिक 'हिंद-इस्लामी ज्ञान का विविधीकरण' था। उसने 'पैगंबर मुहम्मद' की प्रशंसा किए हुए बिना कुछ भी लिखते हुए स्वयं को विचित्र स्थिति में पाया (ट्रश्के 2016: 62)।

सत्ता तथा संरक्षण

सत्ता और संरक्षण के संबंधों की गहराई में जाते हुए ट्रश्के यह तर्क देती हैं कि संस्कृत रचनाओं को प्रदत्त मुग़ल संरक्षण का उद्देश्य 'ब्राह्मणों, हिंदू या जैन जन-समुदाय के लिए शाही सत्ता को उचित ठहराना नहीं था बल्कि 'यह अत्यंत जटिल था'। 'मुग़ल अपनी शाही संस्कृति के स्वरूप और सीमाओं को सूत्रबद्ध कर रहे थे और संस्कृत इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग थी ... संस्कृत विद्वान, ग्रंथ

तथा ज्ञान-तंत्र मुग़ल सत्ता को, विशेषकर इसकी सांस्कृतिक राजनीति को परिभाषित और पुनर्परिभाषित करने की इस अविरत परियोजना में भागीदार थे' (ट्रश्के 2016: 99.100)। अनुवाद की परियोजना का उतना ही महत्वपूर्ण लक्ष्य, जैसा कि उचित ही अबुल फ़ज़ल द्वारा टिप्पणी की गई है, 'रूढ़िवादी मुस्लिमों को अपने विश्वासों पर फिर से विचार करने हेतु पुनः प्रेरित करना था' (ट्रश्के 2016: 207)। यह स्वयं अकबर के द्वारा, शक्तिशाली *उलमा* के नियंत्रण से धार्मिक सत्ता को दूर करने के लिए, *मुज़्तहिद* (कानून के व्याख्याता) होने के दावे की योजना से भी मेल खाता था। ट्रश्के का यह भी तर्क है कि मुग़ल अभिजात्यों, जैन, ब्राह्मण तथा अन्य साहित्यविदों के बीच साहित्यिक आदान.प्रदान के तंत्र में मुग़ल शाही दरबार की केंद्रीय स्थिति थी। 'अनेक चिंतक, फ़ारसी तथा संस्कृत दोनों, शाही दरबार को अपनी-अपनी परंपराओं की सीमाओं के बीच संतुलन के प्रमुख केंद्र के रूप में देखते थे। मुगलों ने इस छवि को फ़ारसी, संस्कृत, हिंदी तथा अन्य भाषाओं में रचना करने वालों को व्यापक संरक्षण प्रदान कर सशक्त बनाया था' (ट्रश्के 2016: 229)। इसके अतिरिक्त, 'मुगलों ने संस्कृत परंपरा में हिंदुस्तान को उसके ऐतिहासिक, मिथकीय तथा साम्राज्यिक भावों के साथ जानने की विशिष्ट संभावनाओं को देखा था' (ट्रश्के 2016: 230)। ट्रश्के मुगलों की शाही कार्यप्रणालियों के प्रमुख कारक के रूप में 'बहु-सांस्कृतिकता' की पहचान करती हैं और इस प्रकार 'उन्होंने अपने शाही दरबार को विभिन्न सांस्कृतिक मोर्चों से सुसज्जित स्थान के रूप में आकार दिया था' (ट्रश्के 2016: 231)। यह 'हिंदी' ही थी जिसने फ़ारसी तथा संस्कृत विद्वानों के बीच मध्यस्थ भाषा के रूप में काम किया था।

बोध प्रश्न-1

1) भारतीय साहित्यिक परम्परा के क्षेत्रीयकरण पर शेल्डन पोलॉक के विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

2) क्या आप एलिसन बुरा के इस मत से सहमत हैं कि भारतीय साहित्यविद् शास्त्रीय हिंदी *रीति* कविता के जीवंत चरित्र का उचित मूल्यांकन करने में असफल रहे थे?

....

....

....

3) ऑड्री ट्रश्के सत्ता तथा संरक्षण के बीच क्या संबंध देखती हैं? संस्कृत को प्राप्त उप-साम्राज्यिक संरक्षण के संदर्भ में विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

18.3 भारतीय साहित्यिक परम्परा की विशेषताएँ

क्षेत्रीय साहित्य की मुख्य विशेषता यह थी कि अधिकांशतः रचनाकारों का ध्यान गद्य के बजाय पद्य पर बना रहा था।

18.3.1 राजनीतिक इच्छा शक्ति तथा भाषा का क्षेत्रीयकरण

क्षेत्रीय स्थिति को ऊंचा उठाने में राजनीतिक संपर्कों तथा संरक्षण ने काफ़ी अहम् भूमिका निभाई। सहस्राब्दी की शुरुआत में सार्वदेशिक संस्कृत के बजाय अभिलेखों का अंकन क्षेत्रीय भाषाओं में किया जाने लगा, इस तरह क्षेत्रीय भाषा ने 'राजनीतिक इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति' का स्वरूप ले लिया। ब्रज को ओरछा राजाओं के साथ-साथ मुगलों तथा अन्य अभिजात्यों से मिले संरक्षण ने ही इसका दर्ज़ा 'सार्वदेशिकता' की प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर किया। पोलॉक क्षेत्रीयकरण की प्रक्रिया में धर्म की भूमिका को कम मानते हुए, किसी क्षेत्रीय भाषा के दर्जे को साहित्यिक भाषा के दर्ज़े तक उठाने में दरबार के महत्व पर बल देते हैं। पोलॉक (फ़रवरी 1998: 31) का तर्क है 'यह सार्वदेशिक अभिजात्य

ही थे ... जिन्होंने अपने समकक्षों के लिए दरबारी कविता का सृजन करते हुए कन्नड़ (और तेलुगू, मलयालम, ब्रज, असमी) को सबसे पहले साहित्यिक तथा राजनीतिक अभिव्यंजना के माध्यम में बदल दिया ... भाषा के व्याकरणिक तथा साहित्यिक संहिताओं के एकीकरण की इच्छा अंतरंग रूप से एकीकरण की राजनीतिक इच्छा से जुड़ी हुई थी, चूँकि भाषा के ऊपर सत्ता रखने का मतलब उस भाषा को इस्तेमाल करने वालों के ऊपर सत्ता रखने से था।' अभिलेखों तथा राजकीय आदेशों को तब क्षेत्रीय भाषा में लिखा जाने लगा, इस प्रकार इसने 'सार्वदेशिक-क्षेत्रीयता' का चरित्र ग्रहण किया और 'क्षेत्र के स्तर पर साम्राज्यिक संस्कृति की परिस्थितियों को पुनर्सृजित किया'।

18.3.2 प्रसार और पारगम्य सीमाएँ

मध्यकालीन क्षेत्रीय-भाषा साहित्य की एक प्रमुख विशेषता इसका प्रसार था, इसमें निहित विचारों का प्रसार, विद्वानों के साथ-साथ इसके ग्रंथों और साहित्य की सीमाओं के आर-पार प्रसार ने काव्य समुदाय, ***कविकुल***, के विचार को जन्म दिया जो समान विरासत और विधाओं को साझा करता था। सांस्कृतिक सीमाएँ लचीली तथा तथा पारगम्य थीं, विचारों का प्रसार और आदान-प्रदान इस काल की एक सामान्य और स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। इस साहित्य प्रसार के अभिकर्ता (*gent*), दरबार, व्यापारी/व्यापारिक केंद्र और धर्मवेत्ता, विशेषकर भक्ति संत थे। व्यापारी, 'स्थानीय तथा परा-स्थानीय' स्तरों के बीच संपर्कों के रूप में कार्य करते थे। यह प्रवाह और प्रसार किसी एकल भाषा परंपरा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि विभिन्न साहित्यिक परंपराओं के मध्य गतिमान था। क्षेत्रीय भाषाएँ विशेष रूप से पारगम्य थीं, उन्होंने संस्कृत तथा फ़ारसी दोनों साहित्यिक परंपराओं से ग्रहण किया था। लेकिन, यह आदान-प्रदान किसी विशेष धार्मिक समुदाय तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह विभिन्न 'सामाजिक-भाषायी समुदायों' के मध्य प्रवाहमान था, यह अपनी प्रकृति में ही भ्रमणशील था। केशवदास स्वयं ओरछा से मुग़ल संरक्षणत्व में, वहाँ से रहीम तथा बाद में उसके पुत्र इराज के संरक्षणत्व में और फिर से एक बार ओरछा राज्य में पदग्रहण कर भ्रमणशील बने रहे। 'कोई भी परंपरा स्वयं में विशिष्ट या अपनी सीमाओं में ही पृथक नहीं थी' (ब्रॉयन और बुश 2014ः 4)। इस प्रकार ब्रज *कविकुल* आपस में ही एक दूसरे के साथ संवाद में नहीं था बल्कि अपने संस्कृत पूर्वागामियों के साथ भी संबद्ध था। 'यह *कविकुल* ... सांस्कृतिक शक्ति का एक जटिल ढाँचा था, यह एक ऐसा तंत्र था जिसके माध्यम से रचनाकार अपनी संजोयी हुई सांस्कृतिक परंपराओं को प्रसारित करते थे' (बुश 2014ः 201)।

इस प्रकार, पाठ-गत स्थिरता या पाठ-गत शुद्धता मध्यकालीन परंपरा की विशेषता नहीं थी। लचीलापन और गतिशीलता इसके इतने मजबूत घटक थे कि विद्वानों ने किसी मानकीकृत प्रारूप का अनुकरण नहीं किया और उदारतापूर्वक किसी विशिष्ट या सभी परंपराओं से कुछ न कुछ ग्रहण किया। धार्मिक तथा जातिगत आधार पर भी कोई भाषायी अवरोध नहीं थे। *हिंदवी* ग्रंथों के लचीलेपन और लोकप्रियता की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता इनके फ़ारसी लिपि में किए गए रूपांतर थे। *प्रेमाख्यानों* ने, अवधी में रचित लेकिन फ़ारसी लिपि में कलमबद्ध, उदारतापूर्वक ब्राह्मण और इस्लामी दोनों सांस्कृतिक परंपराओं से ग्रहण किया।

गतिशीलता और पूर्व-आधुनिकता

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है निरंतर यात्राओं, विशेषकर वैष्णव संतो तथा संरक्षण के आकांक्षी साहित्यिकारों की यात्राओं, के परिणामस्वरूप विचारों की गतिशीलता 1500-1800 के बीच के इस काल की मुख्य विशेषता है, जिसे विद्वानों ने पूर्व-आधुनिकता की विशेषता के रूप में देखा है।

18.3.3 संकरण (Hybridity)

क्षेत्रीयकरण में, संकरण न कि 'अनन्यता' आदर्श कसौटी थी। भारतीय कवियों ने संस्कृत परंपरा तथा फ़ारसी साहित्यिक परम्परा दोनों से ही ग्रहण किया। तथापि, उन्होंने संस्कृत और फ़ारसी दोनों परंपराओं से बिल्कुल भिन्न अपनी विशिष्ट शैली को आकार दिया। कृष्ण भक्त ब्रज-कवि हित हरिवंश (1502-1552), राधा वल्लभ संप्रदाय के कथित संस्थापक, स्वामी हरिदास, हरिराम व्यास और सूरदास ने *भागवत् पुराण* और संस्कृत *अलंकार-शास्त्र* से प्रेरणा ग्रहण की थी। इसी प्रकार, तुलसीदास की *रामचरितमानस* मोटे तौर पर *संस्कृत-रामायण* का अवधी संस्करण थी। ऐसा ही, संपूर्ण भारत में शैव

तथा वैष्णव भक्ति काव्य की रचनाएँ भी प्रदर्शित करती हैं जो *भागवत् पुराण* से प्रेरणा ग्रहण करती थीं तथा उनकी साहित्यिक रचना-शैली में *भागवत्* के संस्करण/टिप्पणी को प्रतिबिंबित करती थीं। 'पूर्व-आधुनिक भारतीय परिदृश्य की एक निर्धारक विशेषता फ़ारसी तथा क्षेत्रीय-भाषा क्षेत्रों के बीच परस्पर संकरण है जो मुग़ल शासन के उत्कर्ष (1526-1857) के दौरान हुआ' (ब्रॉयन और बुश 2014: 7)। रहीम (ख़ान-ए ख़ानान) के सदाचार तथा नीति पर दोहों की रचना गहन रूप से संस्कृत नीति परंपरा से प्रेरित थी। उनकी *नगरशोभा* (दोहे) तथा बरवै *नायिकाभेद* (बरवै) दरबारी काव्य के प्रभाव का संकेत करती हैं तथा *श्रृंगार* रस से संबंधित हैं और इनमें अवधी के प्रभाव का संकेत भी मिलता है और दोनों ही संस्कृत तथा फ़ारसी शब्दावली से परिपूर्ण हैं। यह न केवल संस्कृत और फ़ारसी परंपराओं के ऊपर रहीम की निपुणता का संकेत करता है बल्कि इसके साथ ही फ़ारसी और *हिंदवी* परंपराओं के बीच संपर्क को चिन्हित करने में भी सहायता करता है और इस प्रकार ब्रजभाषा और फ़ारसी कविता की रचना-शैली के बीच के अंतराल को भी भरता है' (लेफ़ेव्र 2014: 97)। वहीं उनका *विरह काव्य* (गोपियों के कृष्ण से वियोग पर आधारित) भक्ति काव्य से प्रेरित लगता है। उनकी *मदनशतक* का झुकाव खड़ी बोली के मुहावरों की ओर अधिक है, वहीं उनकी खेत *कौतुकम* कविता संग्रह संस्कृत और फ़ारसी का मिश्रण लिए हुए है।

ब्रज कवि राजस्थानी (प्राकृत) भाषा-शैली से भी बहुत अधिक प्रभावित थे, विशेषकर उनकी ऐतिहासिक रचनाओं में शैलीगत मामलों में *रासो* परंपरा से काफ़ी कुछ ग्रहण किया हुआ नज़र आता है। केशवदास की *जहाँगीरजसचंद्रिका* छप्पय में *रासो* शैली में लिखी गई थी जो *रासो*-काव्य का पसंदीदा छंद रहा है।

कवियों के समुदाय की स्पष्ट उपस्थिति को *कविकुल* के विचार से जाना जा सकता है। यह केशवदास की *रसिकप्रिया* में स्पष्ट रूप से मौजूद है। यह संकेत करता है कि 'परस्पर सहयोग', 'साझे सरोकार' तथा 'साझी रचना पद्धति/भाषा शैली' का विचार उस समय स्पष्ट रूप से मौजूद था। इससे संकेत मिलता है कि कोई कवि चाहे वह मुग़ल दरबार में हो या ओरछा की सेवा में या किसी अन्य राजपूत दरबार की सेवा में, समान रचना-शैली के साथी कवियों के मध्य समुदाय की सामूहिक भावना का भाव मौजूद था। इस प्रकार, बुश (2009: 16) का तर्क हैं कि, भले ही यह कवि एक दूसरे से कभी ना मिले हों, वह आपस में शास्त्रीय सौंदर्यबोध को लेकर एक साहित्यिक सहमति से बंधे हुए थे, जो एक सुनिश्चित समरूपता और रचना-शैली के प्रति निष्ठा को प्रोत्साहित करती थी'।

रीति कवियों ने ***मुक्तकों*** (स्वतंत्र रूप से लिखे गए छंद) को तरज़ीह दी जो यह संकेत करता है कि वह अपने विशिष्ट शैलीगत चिन्हों को विकसित करने में सफल हुए थे और उन्होंने परा-स्थानीय साहित्यिक परंपराओं की स्थापना की थी।

18.3.4 संस्कृत ग्रंथों का क्षेत्रीयकरण

इन भारतीय रचनाकारों ने संस्कृत ग्रंथों के क्षेत्रीय संस्करणों को रचने की कोशिश भी की। हरिराम व्यास ने, जिसे ओरछा के राजा मधुकर शाह का संरक्षण प्राप्त था, *भागवत् पुराण* के पाँच अध्यायों का अपनी *रसपंचाध्यायी* में ब्रज संस्करण रचा। व्यास ने संस्कृत ग्रंथ के कुछ खंडों को छोड़ा भी है। नंददास (1570) की ब्रज रचनाओं में संस्कृत रचनाओं तथा संस्कृत शैली की गहरी छाप देखने को मिलती हैः उन्होंने भानुदत्त की *रसमंजरी, रसपंचाध्यायी* (*भागवत् पुराण* के 5 अध्याय) और कृष्ण मिश्र की *प्रबोधचंद्रोदय* के ब्रज संस्करण को संकलित किया। इस प्रकार, उनकी *मनमंजरी* तथा *अनेकार्थमंजरी* (ब्रज शब्दकोश) *अमरकोश* के पैटर्न पर लिखे गए हैं, जबकि उनकी *पंचाध्यायी* जयदेव की *गीत गोविंद* का अनुकरण करती है। यह रचनाएँ संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद मात्र नहीं थी बल्कि उन्होंने अपनी शैलियों और अनुछाप को इसमें प्रविष्ट कराया है। जैसा कि ए. के. रामानुजन का मानना है, 'ये अनुवाद मात्र 'अनुक्रमिक अनुवाद' नहीं हैं और न ही आधुनिक लेखकों के शब्दशः अनुवाद। बुश (2014: 128) का मानना है कि, उन्होंने *शास्त्रों* को नया रूप दिया, विषयवस्तुओं में बदलाव किया और विशिष्ट ब्रज परिवेश में उनका स्थानीयकरण किया। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद कार्य करने का मुख्य उद्देश्य संस्कृत ग्रंथों को क्षेत्रीय पाठकों को उपलब्ध कराना था। 'ब्रजभाषा ने संस्कृत के स्थान को अपने में आत्मसात कर लिया और इस शास्त्रीय भाषा को अप्रासंगिक बना दिया' (बुश 2014: 129)।

18.3.5 भक्ति परम्परा तथा क्षेत्रीय साहित्य

क्षेत्रीय भाषा परंपरा के उदय में भक्ति, विशेषकर वैष्णव *सगुण* भक्ति परंपरा, ने मुख्य भूमिका निभाई थी। ब्रज तथा गुजराती परम्पराएँ मुख्यतः कृष्ण भक्ति पर केंद्रित थीं, जबकि अवधी राम परंपरा पर केंद्रित थी। हालांकि, केशवदास ने अपनी *जहाँगीरजसचंद्रिका* में जहाँगीर की तुलना रघु कुल के भगवान राम से की है। लेकिन, उन्होंने 'भक्ति रस के विचार को अपनाने' के बजाय श्रृंगार रस को अपनाया। लेकिन, पोलॉक क्षेत्रीयकरण की प्रक्रिया में भक्ति की भूमिका पर सवाल उठाते हैं। उनका तर्क है, कन्नड़ के संदर्भ में, कि 'क्षेत्रीयकरण' धार्मिक आवश्यकताओं से प्रेरित नहीं था, यह किसी भी अर्थपूर्ण संदर्भ में लोकप्रिय नहीं था ... लेकिन ऐतिहासिक रूप से जितने मामलों में हम नज़र डाल सकते हैं, क्षेत्रीय-भाषाओं की दिशा में इस परिवर्तन में राजदरबार की भूमिका उनमें प्रचुरता से स्पष्ट है' (पोलॉक, फ़रवरी 1998: 30-31)।

बोध प्रश्न-2

1) क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

....
....
....

2) प्रसार तथा पारगम्य सीमाओं से आप क्या समझते हैं? क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।

....
....
....

3) क्षेत्रीय साहित्य के संदर्भ में संकरण को परिभाषित कीजिए।

....
....
....

4) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि भक्ति के उदय तथा क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा के उभार के बीच विशिष्ट संबंध था?

....
....
....

18.4 संस्कृत तथा मुग़ल संरक्षण

संस्कृत के विद्वानों का अकबर के दरबार में आगमन 1560 के दशक में शुरु हुआ जो 1570 के दशक में *इबादत ख़ाना* की स्थापना के साथ और बढ़ा; इस तरह की धार्मिक परिचर्चा अकबर के शासनकाल से जहाँगीर के शासनकाल तक जारी रही। अकबर ने कई संस्कृत ग्रंथों के फ़ारसी अनुवादों को तैयार करवाया – *रामायण* (1588), *महाभारत* (रज़्मनामा), *हरिवंश*, *पंचतंत्र*, *कथासरितसागर*, इत्यादि। इन सब पर हम पहले ही **इकाई 1** में चर्चा कर चुके हैं, अतः मुग़ल शासकों द्वारा संस्कृत अनुवाद की इस परियोजना को दिए गए अपार संरक्षण को प्रस्तुत इकाई की विवेचना से साभिप्राय बाहर रखा गया है। यहाँ हमारा ध्यान विशिष्ट रूप से मुग़लों द्वारा प्रदान किए गए संरक्षण की प्रकृति पर रहेगा।

ट्रश्के का तर्क है कि मुग़लों के विभिन्न संस्कृतियों बीच आदान-प्रदान से जुड़े हित साहित्य तथा व्याकरण तक ही सीमित थे। राजकीय इतिहासों को लिखने, शाही आदेशों तथा दस्तावेज़ों को दर्ज़ करने, इत्यादि के लिए फ़ारसी को चुना गया था। यह भी स्मरण रहे कि न तो मुग़ल अभिजात्यों ने और न ही अनुवादकों ने संस्कृत का अध्ययन किया था। संस्कृत पाठक अक्सर संस्कृत ग्रंथ को *हिंदवी* में अनुवादकों को समझाते थे, तब फ़ारसी अनुवादक इस सामग्री का फ़ारसी में अनुवाद करते थे। इस

प्रकार संस्कृत ग्रंथ का मौखिक बखान मुग़ल सांस्कृतिक दुनिया की एक आम विशेषता थी तथा क्षेत्रीय-भाषाओँ ने, विशेष रूप से ब्रजभाषा ने, सम्पर्क-भाषा के रूप में कार्य किया।

मुग़ल स्वयं संस्कृत से परिचित नहीं थे। तथापि, मुग़ल बादशाहों के सामने संस्कृत ग्रंथ पेश किए जाते थे। लेकिन, इनकी रचना उपहार-स्वरूप देने के लिए ही अधिक की जाती थी, बजाय कि मुग़ल दरबार में किसी वास्तविक पठन-पाठन के उद्देश्य से।

संस्कृत विद्वान, जैन तथा ब्राह्मण, दोनों ही, मुग़ल दरबारी संस्कृति के सक्रिय भागीदार थे। अकबर के अधीन जैन प्रमुख भागीदार (1560-1610) थे, यद्यपि उनके प्रभुत्व का अकबर के बाद पतन होने लगा; जबकि ब्राह्मणों की उपस्थिति (1560-1660) शाहजहाँ के काल तक जारी रही। जैनों की उपस्थिति स्पष्ट रूप से गुजरात पर मुग़ल अधिकार (1572-73) का परिणाम थी तथा मुग़ल संरक्षण प्राप्त करने वाले अधिकांश जैन विद्वान गुजरात क्षेत्र से आते थे। लेकिन, मुग़ल दरबार में ब्राह्मणों की उपस्थिति अधिक व्यापक भौगोलिक क्षेत्र से संबंध रखती थी – बंगाल से लेकर दक्षिण भारत तक।

मुग़ल दरबार में संरक्षण पाने वाले प्रथम ज्ञात संस्कृत विद्वान ओडीशा के महापात्र कृष्णदास (1565) थे जिन्होंने *गीतप्रकाश* की रचना की थी; इसके बाद नरसिंह थे, दोनों ही का संबंध मौलिक रूप से गजपतियों के दरबार से था। कछवाहा शासकों, मान सिंह तथा माधो सिंह, के दरबार के माध्यम से पुण्डरीकविट्ठल का अकबर के दरबार में प्रवेश हुआ और इसी प्रकार, गोविंद भट्ट, जिसे 'अकबर कालीन कालिदास' कहा जाता था, अकबर के दरबार में रेवा के रामचंद्र के दरबार से आया था। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि मुग़ल संरक्षण में सृजित संस्कृत ग्रंथ मुग़ल बादशाहों के पाठन हेतु नहीं थे। 1569 में, एक जैन विद्वान पद्मसुंदर ने *अकबरसाहिश्रृंगारदर्पण* की रचना की। अकबर के दरबार से संबंधित एक अन्य जैन विद्वान हीरविजय था जो अकबर की सेवा में 1583 में सीकरी में शामिल हुआ था। अकबर के निर्देश पर सोलहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में, विहारी कृष्णदास ने पहले फ़ारसी-संस्कृत शब्दकोश *पारसीप्रकाश* की रचना की और इस प्रकार संस्कृत, फ़ारसी तथा मुग़ल साम्राज्य के बीच संबंध की स्थापना का प्रयत्न किया। कृष्णदास अकबर को एक 'अत्यन्त नीतिपूर्ण राजा' के रूप में पेश करता है।

ब्राह्मण, जिन्होंने अकबर के दरबार में प्रवेश किया, उन्हें आमतौर पर संस्कृत ग्रंथों के अनुवादकों और ज्योतिषियों के रूप में नियुक्त किया गया। अकबर ने *ज्योतिषराज* के पद की स्थापना की और अकबर के अधीन नीलकंठ ने *ज्योतिषराज* का पद ग्रहण किया था।

संस्कृत को राजपूत अभिजात्यों का उदार संरक्षण भी प्राप्त हुआ। आमेर के कछवाहा महान् संरक्षकों में से एक थे। राजा मान सिंह ने मुरारी दास द्वारा रचित जीवनीपरक संस्कृत रचना मानप्रकाश को कलमबद्ध करवाया, वहीं हरीनाथ ने दंडिन और भोज पर *काव्यादर्श-मार्जन* और *सरस्वतीकंठभरण-मार्जन* भाष्यों की रचना की।

18.5 भारतीय साहित्यिक परम्पराओं को प्राप्त संरक्षण

16वीं शताब्दी के दौरान राजदरबार में क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक परंपरा को उदार संरक्षण प्राप्त हुआ। लेकिन, ये कवि कई प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह कर रहे थे, में अपने संरक्षकों की प्रशंसा में लिखने वाले, प्रशस्तियों के रचनाकार मात्र नहीं थे बल्कि वह मुख्यतः सलाहकारों के रूप में भी काम करते थे। उन्हें कूटनीतिक अभियानों में भेजा जाता था, वह विभिन्न संघर्षरत तथा स्थानीय समूहों के साथ राज्य के संबंधों को लेकर समझौतों में मध्यस्थता भी करते थे। ये कवि मौलिक रूप से विद्वान थे, जो आवश्यक रूप से किसी आधिकारिक पद को ग्रहण नहीं करते थे। कई बार वे मात्र सलाहकार या दरबारी (*नदीम*) के रूप में सेवारत रहते थे। अफ़ीफ़ जो कभी भी फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के दरबार में एक अधिकारी नहीं रहा था, एक *नदीम*, एक विद्वान सलाहकार था। केशवदास ओरछा राजाओं के लिए मात्र राजकवि नहीं थे बल्कि एक मित्र, सलाहकार, और गुरु थे। लाहौरी और कांबोह, सुंदर कविराज को मात्र ब्रज कवि नहीं बल्कि उसे एक दरबारी और कूटनीतिज्ञ के रूप में पेश करते हैं जिसे शाहजहाँ ने बुंदेला राजा जुझार सिंह और बीर सिंह देव के साथ समझौता करने के लिए भेजा था। खाफ़ी ख़ान यह वर्णन करता है कि उत्तराधिकार के युद्ध के दौरान औरंगजेब ने 'काब' को मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह के साथ समझौता करने के लिए भेजा था।

यहाँ हम अपनी चर्चा को केवल सोलहवीं शताब्दी तक सीमित रखेंगे। यद्यपि कई अधिकारी-सह-विद्वान-सह-कवियों ने जहाँगीर, शाहजहाँ तथा क्षेत्रीय दरबारों की शोभा बढ़ायी थी। सुंदर कविराज शाहजहाँ का राजकवि था, लेकिन, यह सब हमारे अगले पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 112** में चर्चा का विषय रहेगा।

विस्तार तथा सदृढ़ीकरण की प्रक्रिया ने मुग़ल दरबार के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विचारों तथा संस्कृतियों के आदान-प्रदान को सुगम्य बनाया। 'कवि तथा कविताएँ नियमित रूप से क्षेत्रीय दरबारों तथा साम्राज्य की राजधानियों के मध्य भ्रमण करती रहती थीं और इस प्रकार एक साझे मुगल-राजपूत (क्षेत्रीय) दरबारी लोकाचार का निर्माण हुआ' (बुश 2014: 193)। इसके अतिरिक्त, भारतीय साहित्य के विकास का एक प्रमुख कारण भारतीय परिवेश में मुग़ल शासकों का पर-संस्कृतिकरण था। मुग़ल दरबार धीरे-धीरे अधिकाधिक भारतीय स्वरूप लेता गया, विशेषकर अकबर के काल से, यह स्थानीय परिवेश में अधिक दिलचस्पी रखता था, अपने पिता और पितामह के विपरीत जो स्वयं को मध्य एशियाई वातावरण में अधिक स्थापित पाते थे।

राजपूत माताओं की संतान होने के कारण, *हिंदवी* जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों की मातृभाषा थी। अतः इन मुग़ल शासकों को *हिंदवी* का ज्ञान होना संदेह से परे है। यह वर्णन मिलता है कि केशव ने स्वयं अपनी कविताएँ जहाँगीर के समक्ष पेश की थीं। जहाँगीर अपने भाई दानियाल का भारतीय संगीत के प्रेमी के रूप में उल्लेख करता है और उसने 'आम जन की भाषा' में कविताओं की रचना की। सूरदास तथा नंददास द्वारा अकबर के काल में रचित लोकप्रिय *भ्रमरगीतों* को जहाँगीर की विशिष्ट प्रशंसा हासिल हुई।

18.5.1 मुग़ल दरबार में संरक्षण

मुग़ल एक 'बहु.भाषायी तथा एक बहु-साहित्यिक अधिक्षेत्र' को साझा करते थे। दरबार न केवल राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र थे बल्कि सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती थीं। मुग़ल संरक्षण में रचित ब्रज ग्रंथ मुश्किल से ही प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही मुग़ल दरबार में ब्रज कवियों के विषय में फ़ारसी लेखक पूरी तरह से मौन हैं। इस प्रकार मुग़ल दरबार में ब्रज की उपस्थिति और महत्ता को जानने के लिए हमें बिखरे हुए संदर्भों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह कहा जाता है कि हुमायूँ ने *हिंदवी* संगीतकारों के पुत्रों को संरक्षण प्रदान किया था। इस्लाम शाह सूर के दरबार में भी कई क्षेत्रीय भाषाओं के कवियों के शोभित होने का पता चलता है, जिसमें ब्रज कवि नरहरी भी शामिल हैं जिन्होंने बाद में अकबर के दरबार में स्थान पाया था। मधुमालती के रचना कार अवधी कवि मंझन तथा अफ़ग़ान अमीर मुहम्मद फ़रमूली, जिन्होंने अवधी में रचनाएँ की, इस्लाम शाह के दरबार में सुशोभित थे। यद्यपि सोलहवीं शताब्दी के आखिर में अवधी का पतन होने लगा और इसने ब्रजभाषा के लिए रास्ता तैयार किया।

अकबर (1556-1605) धार्मिक और भाषायी सीमाओं से परे साहित्यक विधाओं का महान् संरक्षक था। अबुल फ़ज़ल *आईन-ए अकबरी* के चौथे भाग में एक पूरा खंड *दानिश-ए हिंदुस्तान* (भारत की विद्याओं) को समर्पित करता है। अबुल फ़ज़ल यह संकेत करता है कि फ़ारसी संस्कृति को संस्कृत के ज्ञान-तंत्र को अपनाना और समाहित करना चाहिए और इस प्रकार *हिंद-फ़ारसी* ज्ञान-तंत्र की प्रकृति में परिवर्तन लाना चाहिए। फ़ारसी विद्वानों को संस्कृत विचारों से परिचित कराने का मुख्य उद्देश्य फ़ारसी साहित्यिकों को संस्कृत की परम्पराओं से परिचित कराना था। अकबर ने संस्कृत-आधारित खगोलशास्त्र तथा गणनाओं को प्रोत्साहित किया। उसने *ज्योतिषाचार्य* (भारतीय खगोलशास्त्री) का पद अलग से सृजित किया तथा कहा जाता है कि उसका भारतीय जन्म पत्रियों में विश्वास था।

अकबर द्वारा कई ब्रज अलंकार.शास्त्रों को तैयार करने में संरक्षण प्रदान करने का उल्लेख मिलता है। अबुल फ़ज़ल टिप्पणी करता है कि 'महामहिम की उत्साही प्रकृति हिंदी तथा फ़ारसी में काव्य-रचना के प्रति मज़बूत झुकाव पैदा करती है, और वह साहित्यिक उपमानों की बारीक़ियों के प्रति सूक्ष्म समझ का प्रदर्शन करते हैं' (बुश 2014: 135), यह कथन स्पष्टतः अकबर के ब्रज के ज्ञान तथा *हिंदवी* कविता के प्रति उसके झुकाव का संकेत करता है। अकबर के अनुरोध पर रचित वर्तमान में उपलब्ध एकमात्र ग्रंथ जैन विद्वान पद्मसुंदर द्वारा रचित *अकबरसाहिश्रृंगारदर्पण* (1569) है। यह भारतीय काव्यशास्त्र

पर एक संस्कृत ग्रंथ है। लेकिन, ब्रज में लिखी गई रीति कविता मुख्यतः दरबारी कविता है। अकबर के अधीन (1556-1605) मुग़ल दरबारी संरक्षण में ब्रज ने नई ऊँचाइयों को हासिल किया। इसका हल्का सा संकेत अबुल फ़ज़ल की चर्चा से मिलता है। ब्रज *रीति काव्य* मुख्यतः ***नायिकाभेद*** के रूप में ***श्रृंगार रस*** में लिखा गया है। अबुल फ़ज़ल *आइन-ए अकबरी* के साहित्य वाले अपने खंड में *नायिकाभेद* का उल्लेख करता है; जिससे इसके ब्रज का प्रभाव होना माना जा सकता है। बुश *रीति* साहित्य को 'संस्कृत काव्य परंपरा के क्षेत्रीय पुनरुत्थान' के रूप में देखती हैं। अकबर *ध्रुपद* का एक उत्साही प्रेमी था जो मूल रूप से ब्रज में रची गई थीं और अकबर के दरबार में तानसेन इसके सबसे प्रमुख कलावंत थे। हम वृंद तथा सुंदर के विषय में भी सुनते हैं लेकिन उनके विषय में ज्यादा कुछ ज्ञात नहीं है। 1584 के आसपास लिखे गए, एक ब्रज ग्रंथ *चौरासी वैष्णवन* की *वार्ता* मथुरा में सूरदास के पास अकबर के जाने और सूरदास की अकबर के प्रति उदासीनतापूर्ण प्रतिक्रिया का भी उल्लेख करता है। इस घटना की सच्चाई का प्रश्न छोड़ भी दें तो यह मुग़ल दरबार में ब्रजभाषा की व्यापक स्वीकार्यता और उनके मुग़ल वैभव के प्रति अप्रभावित रहने की ओर संकेत करती है। करनेश द्वारा रचित *कर्णभरण*, *श्रुतिभूषण* और *भूपभूषण* रीति ग्रंथ यद्यपि हमें उपलब्ध नहीं हैं किंतु *हिंदवी* साहित्य में इनका बारंबार उल्लेख मिलता है। अकबर के दरबार का एक अन्य ब्रज कवि मनोहर कछवाहा था, जिसका जहाँगीर भी संदर्भ देता है किंतु दुर्भाग्यवश हमें उसकी केवल फ़ारसी रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। हिंदी के कवियों में गंग (ब्रज कवि) का उल्लेख भिखारीदास द्वारा हिंदी कवियों के दो *सरदारों* (महाकवि) में से एक के रूप में किया गया है, इनमें से दूसरा नाम तुलसी (अवधी) का हैं। हम गंग की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं। विचित्र यह है कि वह मुग़ल दरबार के साथ घनिष्ठ संपर्क में था और कोई भी फ़ारसी ग्रंथ उसका उल्लेख नहीं करते हैं। दिलचस्प है कि गंग ने 16वीं तथा प्रारंभिक 17वीं शताब्दी में प्रबंध काव्य के बजाय ***मुक्तक*** कविताओं की रचना की, जिनमें भक्ति, *श्रृंगार* और *नायिकाभेद* का सम्मिश्रण देखने को मिलता है।

इस प्रकार, स्पष्ट रूप से, यद्यपि, मुग़ल दरबार द्वारा क्षेत्रीय साहित्यिक परंपराओं को दिए गए संरक्षण के संबंध में जानकारी का नितांत अभाव है, लेकिन मुग़ल दरबार में ब्रज कविता की उपस्थिति के बिखरे हुए मजबूत संदर्भ प्राप्त होते हैं।

क्षेत्रीय भाषाओं की शाही दरबार और फ़ारसी रंग में रंगी हुई परंपराओं के साथ अंतःक्रिया के परिणामस्वरुप सांस्कृतिक हस्तांतरण भी हुआ। तारीख़नवीसों के वर्णन और भारतीय ***चरितों*** के बीच समानताओं को देखा जा सकता है और इसी तरह ब्रज *ध्रुपद* और *फ़ारसी रुबाई* दोनों ही लगभग समान गीतात्मक रचना-शैली को साझा करते हैं। इसी प्रकार फ़ारसी *सरापा* और *नखशिख* (सिर से पैर के अंगूठे तक सौंदर्य वर्णन) वर्णन एक दूसरे से काफी समानता रखते हैं। रहीम की *'नगरशोभा'* फ़ारसी रचना-शैली के ***शहरआशोब*** से प्रभावित थी, यह संस्कृत और भारतीय परंपरा के ***नगर-वर्णन*** से समरूपता रखता है (बुश 2014: 195-196)।

18.5.2 उप-साम्राज्यिक स्तर पर संरक्षण

क्षेत्रीय भाषाओं को मुग़ल उमरा के हाथों विशेष संरक्षण हासिल हुआ। इस उद्यम में अकबर का सौतेला पुत्र तथा प्रमुख अमीर अब्दुल रहीम ख़ान-ए ख़ानान विशेष स्थान रखता है, जिसने न केवल हिंदी को संरक्षण प्रदान किया बल्कि स्वयं भी अवधी तथा ब्रजभाषा, दोनों में, कविताओं की रचना की और उसे *'हिंदवी'* के एक प्रमुख लेखक का ओहदा प्राप्त था। उसने भी गंग की तरह मुक्तक शैली में रचना की। भिखारीदास अपने ग्रंथ *कविनिर्णय* (1746) में यह दावा करते हैं कि रहीम ब्रजभाषा के एक स्थापित कवि थे। रहीम ने मुख्यतः *दोहा* और बरवै छंदों में लिखना पसंद किया है। ख़ान-ए ख़ानान एक साहित्यिक बुद्धिजीवी और पुस्तक संग्रहण के प्रति विशेष अनुराग रखने वाला व्यक्ति था। वह न केवल फ़ारसी का, बल्कि अरबी, संस्कृत और हिंदी का भी एक प्रतिष्ठित विद्वान था। उसने अकबर के अनुरोध पर पुर्तगाली भाषा भी सीखी। उप-क्षेत्रीय स्तर पर उसके पास सबसे विशाल पुस्तकालय होने का भी पता चलता है। वह स्वयं, रहीम उपनाम से, हिंदी में लिखता था जो उसकी विद्वता को प्रकट करता है। दक्खन में उसका दरबार न केवल संपूर्ण भारत से बल्कि मध्य एशिया और ईरान से भी। विद्वानों को आकर्षित करता था *मआसिर-ए रहीमी* से यह जानकारी मिलती है कि उसने कई हिंदी कवियों, अलाकुली, बाण, गंग, हरीनाथ, जदा, लक्ष्मीनारायण, मंडल, मुकुंद, नरहरी, प्रसिद्ध, संत कवि और तारा को संरक्षण प्रदान किया था। केशवदास और गंग ख़ान-ए ख़ानान की तुलना हनुमान

से करते हैं, जिस प्रकार हनुमान राम के प्रति कर्तव्यनिष्ठा रखते थे, उसी प्रकार ख़ान-ए ख़ानान अकबर के प्रति। गंग, समान रूप से, ख़ान-ए ख़ानान की दान-दक्षिणा देने के लिए भी प्रशंसा करता है, ऐसा प्रतीत होता है कि गंग को भी ख़ान-ए ख़ानान का संरक्षण प्राप्त हुआ था। उसने रहीम की प्रशंसा में कई प्रशस्तियाँ लिखी थीं। ख़ान-ए ख़ानान का पुत्र शाहनवाज़ इराज ख़ान भी ब्रजभाषा का महान् संरक्षक था। केशवदास की विख्यात ऐतिहासिक कृति *जहाँगीरजसचंद्रिका* को भी इराज ख़ान के संरक्षण में लिखा गया था।

अकबर के अन्य प्रमुख दरबारियों में, जिन्होंने स्वयं ब्रजभाषा में पद्य या गद्य लिखे, बीरबल (मृ. 1586) और तानसेन (मृ. 1586? 1589?) भी शामिल थे। बीरबल 'ब्रह्मा' तख़ल्लुस (उपनाम) से लिखता था और यह कहा जाता है कि अकबर ने बीरबल को उनकी ब्रजभाषा की रचनाओं के कारण *कविराज* की उपाधि से सुशोभित किया था। अबुल फ़ज़ल के भाई फ़ैज़ी तथा टोडरमल के द्वारा भी ब्रज में रचना करने का संदर्भ मिलता है। शाहनवाज़ ख़ान, जैन ख़ान कोका के *हिंदवी* रागों और *कवित्तों* (*रीति* छंद) के प्रति प्रेम का उल्लेख करता है, इनसे अकबर के काल में मुग़ल अमीरों के क्षेत्रीय-भाषा साहित्य के प्रति झुकाव का पता चलता है।

इसी प्रकार, अखो (अखा भगत; circa 1615 से 1674 या 1600 से 1655), जो जहाँगीर के अधीन टकसाल मास्टर था, ने बनारस में वेदांत का अध्ययन किया था और वेदांत दर्शन के जन भाषा में सरल संस्करणों की रचना की। बिहारी लाल *'हिंदवी'* का एक अन्य प्रमुख कवि था, जिसे कछवाहा राजपूत और शाहजहाँ तथा औरंगजेब के अमीर, मिर्जा राजा जय सिंह का संरक्षण प्राप्त था। इनका वर्णन विस्तार से हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 112** में किया गया है। इस प्रकार कई मुग़ल उमरा न केवल स्वयं सम्मानित कवि थे, बल्कि कवियों और लेखकों के महान् संरक्षक भी थे।

बोध प्रश्न-3

1) क्या आप इससे सहमत हैं कि आम धारणा के विपरीत मुग़लों ने संस्कृत साहित्यिक परम्परा को उदार संरक्षण प्रदान किया?

....

....

....

2) उप-साम्राज्यिक स्तर पर क्षेत्रीय-भाषा साहित्य को प्राप्त संरक्षण की प्रकृति की विवेचना कीजिए।

....

....

....

18.6 क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा

मध्य काल के दौरान हिंदवी (आधुनिक हिंदी) की मुख्य बोलियाः अवधी (खड़ी बोली), ब्रजभाषा, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी, मालवी, इत्यादि थीं। *हिंदवी* के उद्‌भव को सातवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य अपभ्रंश के विकास में देखा जा सकता है। भाषाविद् हिंदी के विकास के सबसे प्रारंभिक काल को *वीरगाथा* काल (वीरों का बखान करने वाले काव्य का काल) के रूप में विभाजित करते हैं। ऐसी सबसे प्रारंभिक रचनाएँ, जैसा कि हम **बी एच आई सी 107** में चर्चा कर चुके हैं, *रासो* साहित्य हैं; *पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो*, इत्यादि। इसके बाद *भक्ति काल* (भक्ति काव्य का युग) आता है जो 16वीं-17 वीं शताब्दी तक माना जाता है, जिसके बाद *रीति काल* (शास्त्रीय शैली/पद्धति की कविता का युग) आता है जिसकी शुरुआत 16वीं शताब्दी में हुई थी, तथा यह अपनी चरम अवस्था को 17वीं शताब्दी में प्राप्त हुआ।

18.6.1 क्षेत्रीय साहित्यिक परम्पराः अवधी

खड़ी बोली/अवधी/मागधी-प्राकृत का विकास 15वीं-16वीं शताब्दी में हुआ। अवधी ने सबसे पहले

सूफियों के संरक्षण में प्रमुखता पाई, जिन्होंने अवधी (फ़ारसी लिपि और अवधी भाषा में) में *प्रेमाख्यान* साहित्य की रचना की। इस श्रंखला (यह परंपरा शुरुआती 19वीं शताब्दी तक जारी रही) में सबसे पहला ग्रंथ मुल्ला दाऊद का चंदायन (1379) है, जिसके बाद *मृगावती* (कुतुबन; 1503), *पद्मावत* (जायसी; 1540), *मधुमालती* (शेख़ मंझन; 1545), इत्यादि आते हैं। फूकन टिप्पणी करता है कि 'वास्तव में, मुग़ल अभिजात्यों के बीच अवधी ग्रंथों की लोकप्रियता की एक व्याख्या यह है कि वे तीव्र भावात्मक अनुभवों को व्यक्त करते थे और *ज़ौक़* (स्वाद/आनंद), *मारिफ़त* (आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि), *जज़्ब* (भावनाएँ) तथा *हक़ीक़त* (सत्य की समझ) जैसे सूफी मूल्यों का साक्षात्कार कराने में सक्षम थे' (बुश 2014: 202)।

जहाँ अवधी में लिखी गई भक्ति कविता मुख्यतः राम भक्ति परंपरा का निर्वाह करती है, वहीं ब्रजभाषा की रचनाएँ मुख्यतः कृष्ण भक्ति पर केंद्रित थीं। दो श्रेष्ठ कवियों, तुलसी तथा सूरदास ने एक अर्थ में *रामायण* (तुलसी; अवधी में) तथा *भागवत् पुराण* (सूरदास; ब्रजभाषा में) का अनुवाद किया।

अवधी के सर्वाधिक महान् महाकवि विद्वान गोस्वामी तुलसीदास (1532?-1623?) थे। उन्होंने अपनी श्रेष्ठतम रचना *रामचरितमानस* को 1574 में पूरा किया था। तुलसीदास, जो एक ***स्मार्त*** वैष्णव थे, उन्होंने राम भक्ति परंपरा के भावों को व्यक्त किया था। भगवान राम के इर्द-गिर्द उन्होंने आदर्श राजत्व और मानवीय गुणों (*रामराज्य, धर्म* और *नीति*) को गूँथा है जिनका मूर्त स्वरूप भगवान राम थे। स्वयं उन्होंने आमजन के बीच राम भक्ति परंपरा को लोकप्रिय बनाया। महात्मा गांधी ने इसे 'संपूर्ण भक्ति साहित्य का महान्तम ग्रंथ' कहा है। फिलिप ल्यूटगेंडोर्फ इसकी प्रशंसा 'भारतीय संस्कृति की जीवंत जमा-पूंजी' के रूप में करते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण-भक्ति की लोकप्रियता में कमी आने के पीछे प्रमुख कारण रामचरितमानस की लोकप्रियता थी। तुलसीदास जी द्वारा अन्य ग्यारह ग्रंथों की रचना करने का पता चलता है, *विनय पत्रिका, कवितावली, कृष्ण गीतावली, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवै रामायण,* इत्यादि। तुलसी की रचनाओं ने बाद के कई लेखकों को प्रभावित किया था, विशेषकर अग्रदास और नाभादास को, जिन्होंने *भक्तमाल* की रचना की, जो वैष्णव संतो की जीवनियों का संग्रह है।

17वीं शताब्दी में ब्रजभाषा, 'अकबर के काल के अंतिम समय दशकों से साहित्य की भाषा के रूप में अवधी पर हावी होने लगी थी'। बुश (2014: 187) का तर्क है, 'संभवतः मुग़ल जानबूझकर अवधी, जो हिंद-इस्लामी क्षेत्रीय साहित्य की प्राथमिक भाषा रही थी, से दूरी बना रहे थे क्योंकि उनके अफगान प्रतिस्पर्धियों के दरबार में यह मजबूती के साथ पनपी थी और इस तरह यह स्पष्ट रूप से एक प्रतिस्पर्धी राजनीतिक तंत्र से संबंधित थी'।

18.6.2 क्षेत्रीय साहित्यिक परम्पराः ब्रजभाषा

मिर्ज़ा ख़ान (17वीं शताब्दी के आखिर) में ब्रजभाषा की प्रशंसा *अ़साह-यी ज़बानहा* (सभी भाषाओं में सर्वाधिक भावपूर्ण भाषा) के रूप में करते हैं और फ़क़ीरूल्लाह ने इसे *अ़साहतरीन ज़बान* (श्रेष्ठतम भावपूर्ण भाषा) कहा है। भक्ति कवियों ने प्रसार के माध्यम के रूप में ब्रजभाषा का उपयोग किया। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा को उप-साम्राज्यिक स्तर पर राजपूतों तथा अन्य हिंदू, जैन अभिजात्यों और विभिन्न व्यापारिक केंद्रों का संरक्षण भी प्राप्त हुआ। ब्रजभाषा की लोकप्रियता ने साम्राज्य की फ़ारसी और संस्कृत परंपराओं के दायरे से बाहर एक नए पाठक जन-समुदाय का सृजन भी किया।

16वीं शताब्दी में मथुरा और वृंदावन के आसपास हमें कृष्ण भक्ति के ब्रज कवियों का नाटकीय उभार देखने को मिलता है – हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, हरिराम व्यास और सूरदास। ब्रजभाषा की परंपरा में कवि-श्रेष्ठ सूरदास सबसे ऊंचा स्थान रखते हैं। वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास (c. 1503-1563) अष्टछाप के कविरत्नों में से एक थे। कृष्ण-भक्त कवि सूरदास ने शाही संरक्षण से स्वतंत्र रहकर लिखा। वल्लभ संप्रदाय की वैष्णव *वार्ताओं* में सूरदास के प्रति अकबर के अनुराग का उल्लेख मिलता है। गोकुलनाथ ने अपनी रचना *चौरासी वैष्णवन की वार्ता* (c.1640) में मथुरा में अकबर और सूरदास की भेंट होने का ज़िक्र किया है। यह कहा गया है कि उन्होंने दरबारी अनुचरों में शामिल होने के अकबर के अनुरोध को ठुकरा दिया था। अबुल फ़ज़ल द्वारा *आईन-ए अकबरी* में दी गई संगीतकारों की सूची में सूर का नाम भी शामिल है। उनकी सर्वाधिक विख्यात रचना *सूरसागर* है। इस ग्रंथ की सर्वाधिक पुरानी 1582 की प्रति, जयपुर संग्रह में मौजूद है, जिसमें 297 पद हैं और बीसवीं शताब्दी

तक इनकी संख्या बढ़कर 5000 तक हो गई। उनकी विभिन्न शैलियों में *भ्रमरगीत* शैली के सूर के पद अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

स्पष्टतः मुग़ल अभिजात्य ब्रज कविता के प्रति विशेष आकर्षण रखते थे। 17वीं शताब्दी तक ब्रज ने व्यवहारिक रूप से संस्कृत का स्थान ले लिया था और संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद के दौरान एक संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी थी, जिसे ट्रश्के, 'मुग़ल शाही राजदरबार में बोली जाने वाली क्षेत्रीय-भाषा' कहती हैं। सत्ताधारी मुग़ल अभिजात्य, जिसमें मुग़ल बादशाह भी शामिल थे, अकबर के काल से ही '*हिंदवी*' (ब्रज) से सुपरिचित थे।

ओरछा तथा क्षेत्रीय साहित्यिक परम्परा को संरक्षण

ओरछा का बुंदेला राज्य क्षेत्रीय-भाषा परंपरा के प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा, विशेषकर ब्रजभाषा के संदर्भ में। ब्रजभाषा विशेष रुप से ओरछा राजाओं के दरबारी संरक्षण में फली-फूली। कृपाराम और हरिराम व्यास को बुंदेला शासकों का संरक्षण उपलब्ध था। कृपाराम की *हिततरंगिणी* (1541) को *रीति-ग्रंथों* में सर्वप्रथम समझा जाता है, इसे *नायिकाभेद* की रचना-शैली में लिखा गया है तथा यह वैष्णव लोकाचारों का भी बखान करती है। हरिराम व्यास को ओरछा शासक मधुकर शाह का संरक्षण प्राप्त हुआ। इसे नई ऊंचाइयाँ ओरछा के बुंदेला राजाओं के दरबार के दरबारी कवि केशवदास (1555-1617) के अधीन मिली। केशवदास की रचनाएँ ब्रजभाषा काव्य परंपरा की श्रेष्ठता को प्रकट करती हैं। केशवदास की महत्ता को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि उनकी गिनती संस्कृत के प्रमुख काव्य शास्त्रियों धनंजय, मामल्ल और भानुदत्त के साथ की जाती है। *रीति* कविता, जिसके केशवदास सर्वप्रमुख कवियों में से एक थे, आधारभूत रूप से एक दरबारी कविता है। केशवदास का संबंध पंडितों के एक विशेष परिवार से था जिनके पूर्वजों ने तोमरों और ग्वालियर के शासकों की सेवा की थी और उनके पितामह ने ओरछा राज्य के संस्थापक रुद्र प्रताप (1501-1531) का संरक्षण प्राप्त किया था, वहीं उनके पिता ने ओरछा के राजा मधुकर शाह (1554-1592) की सेवा में कार्य किया था। केशवदास ने आठ प्रबंध काव्यों का सृजन किया था। उनकी शुरुआती कृति *रत्नबावनी* एक ऐतिहासिक प्रबंध ग्रंथ है। लेकिन, 1591-1602 के दौरान केशवदास एक साहित्य सिद्धांतकार के रूप में निखर कर आए। इस चरण के दौरान राजा इंद्रजीत, मधुकर शाह के पांचवे पुत्र, और उनके भाई बीर सिंह बुंदेला केशव के संरक्षणदाताओं में थे। केशव की *कविप्रिया* राजा इंद्रजीत की प्रशंसा में लिखी गई है। इंद्रजीत ने स्वयं भी भर्तृहरि पर ब्रजभाषा में भाष्य लिखा था। यह माना जाता है कि उन्होंने 'चाप' या 'धीरज नरिंद' उपनाम से कविताएँ लिखीं। केशव की रसिकप्रिया (1591), *कविप्रिया* (1601), और छंदमाला (1602; छंदों की निर्देशिका) प्रमुख *रीति* ग्रंथ थे, जो क्षेत्रीय भाषाओं में गुटका-लेखन की और *अलंकारशास्त्र* लेखन नई प्रवृत्ति को परिलक्षित करते हैं और जिन्होंने *रीति* साहित्य के निर्धारक लक्षणों को परिभाषित किया।

ब्रज से परे ब्रज

ब्रज ने अपने फलक को और विस्तृत किया, जिसे एलिसन बुश 'ब्रज से परे ब्रज' (Braj Beyond Braj) कहती हैं। वैष्णव संतो ने अपने व्यापक भ्रमणों के माध्यम से न केवल अपने सिद्धांतों और विचारों का प्रसार करने का प्रयास किया और विभिन्न क्षेत्रों में लोकप्रिय आधार प्राप्त किया, बल्कि इसने बदले में उन क्षेत्रीय भाषाओं को समृद्ध बनाया जिनमें वे अपने विचारों को अभिव्यक्त करते थे। इसने क्षेत्रीय भाषाओं को स्थानीय सीमाओं को लाँघने और एक व्यापक आधार ग्रहण करने में सहायता की। *आदि ग्रंथ* (सिखों का धार्मिक ग्रंथ), जिसको गुरु अर्जन ने 1604 में संकलित किया था, में वैष्णव संतो की कई रचनाओं को शामिल किया गया है।

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि *कविकुल* की अवधारणा कवियों के समुदाय के बीच स्पष्ट रूप से अस्तित्व में थी, 'ब्रज *कविकुल*' आपस में साझा करते थेः संरक्षकों की जीवनियों की रचना, राधा-कृष्ण का प्रेम, *अलंकारशास्त्र* (काव्य सिद्धांत; *नायिकाभेद*, इत्यादि)। जिस प्रकार वे अपने समकालीन सह-रचनाकारों के प्रति सचेत थे, उसी प्रकार अपने संस्कृत पूर्वजों से भी उनका सम्पर्क बना रहा था।

ब्रज को राजस्थान (गलता और फतेहपुर) में भी संरक्षण और प्रसार मिला। अहमदनगर के निज़ामशाही

भी समान रूप से भारतीय साहित्यिक परंपराओं को संरक्षण प्रदान करते थे। भानुभट्ट की रसमंजरी को अहमदनगर के निज़ाम शाह द्वारा तैयार करवाया गया था।

18.6.3 अन्य भारतीय साहित्यिक परम्पराएँ

गुजराती

वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रभाव में, विशेषकर चैतन्य के कृष्ण भक्ति पंथ के, गुजराती साहित्य का भी पल्लवन हुआ। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठल गुजरात में जाकर बस गए थे और गुजरात में कृष्ण भक्ति का प्रसार करने लगे। वल्लभाचार्य के पौत्र गोपालदास ने, *c.* 1570 में, गुजराती में *वल्लभाख्यान* की रचना की।

हमारे अध्ययन काल के दौरान शिखर-पुरुष नरसिंह (नरसी) मेहता (*c.* 1500-1580) थे। जिन्हें गुजराती का *आदिकवि* माना जाता है। नरसिंह मेहता का बाद के सभी गुजराती कवियों पर गहन प्रभाव पड़ा। उन्होंने ***आख्यान*** और ***प्रभातीय*** (प्रभात में गाए जाने वाली भक्ति गीत) विधाओं में रचनाएँ कीं। इनमें सबसे अग्रणी *सुदामाचरित* है जिसे *झूलना* छंद में रचित किया गया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ *गोविंदगमन, सूरत संग्राम, श्रृंगारमाला* हैं। उनकी कृतियों की सबसे पुरानी पांडुलिपि 1612 की मिलती है। उनकी रचनाओं को *रस-सहस्त-पदी* में संकलित किया गया है और *चातुरियों* में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है, जो मुख्यतः *श्रृंगार रस* शैली में रचित की गई हैं। मंडन ने गुजराती में *प्रबोध बत्तीसी, रामायण* तथा *रुक्मांगद* कथा की रचना की। भल्लन गुजराती में बाण की कादंबरी को रूपांतरित करने के लिए जाने जाते हैं। वह अपनी आख्यान शैली के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने *दसमस्कंध, नलाख्यान, रामबालचरित* और *चंडीआख्यान* की रचनाएँ भी कीं।

सूफी रचनाकार खूब मुहम्मद चिश्ती (1539-1615) के छंद छंदन और *भावो-भेद* ग्रंथ (जो सामान्यतः वात्सल्य और माधुर्य के भावों पर चर्चा करते हैं) *अर्द्ध-रीति-ग्रंथों* की रचना शैली में गुजराती में लिखे गए थे।

बंगाली

बंगाली भाषा और साहित्य श्री चैतन्य के साथ-साथ फला-फूला। वृंदावन दास ने *चैतन्य भागवत्/ चैतन्य मंगल* की रचना बंगाली भाषा में की। कविराज कृष्णदास के चैतन्य चरितामृत ने गौड़ीय वैष्णव मत के दार्शनिक आधार को स्थापित किया। बंगाली में रचित अन्य प्रमुख रचनाएँ *चूड़ामणिदास* और जयदेव की *गौरांग विजय* तक लोचनदास की *चैतन्य मंगल* हैं। लोचनदास ने *धमाली* की नई विधा की शुरुआत की जो मुख्यतः कृष्ण-गोपी लीलाओं से संबंधित थी। ***पदावलियों*** में संस्कृत की रस रचना-शैली को अपनाया गया और यह भी राधा-कृष्ण की और *वृंदावन* लीला में वर्णित *रास-लीला* पर आधारित थीं।

बंगाल में मंगल काव्य की एक नई विद्या का उदय हुआ जिसने स्थानीय परम्परा के देवी-देवताओं – चंडी, मनसा, धर्म तथा अन्य *पौराणिक* देवी-देवताओं, शिव तथा विष्णु को प्रचारित किया और उनका गुणगान किया। मंगल काव्य की कथाएँ मुख्यतः *पुराणों के आख्यानों* पर आधारित थीं। *धर्म-मंगल* में *बौद्ध धम्म* को *पौराणिक नारायण* के साथ मिलाया गया तथा मुस्लिम *पीर*, सत्यपीर या सत्यनारायण के रूप में उभरे।

बंगाल में कई मुस्लिम रचनाओं को कलमबद्ध किया गया। इसमें मुख्य अराकान के दौलत क़ाज़ी द्वारा रचित *लौर-चंदानी* या मैना सती है। ऐसा कहा जाता है कि *लौर-चंदानी* को बाद में अलाओल द्वारा पूर्ण किया गया जो बंगाल के निचले क्षेत्र (lower Bengal) के मुस्लिम सूबेदार का पुत्र था। उसने *'पद्मावत'* और *सैफुलमुल्कबंदीउज्जमाल* और निज़ामी की दो कृतियों के बंगाली संस्करण को भी तैयार किया था। साबिरे ने *विद्या सुंदर* का एक संस्करण लिखा। वहीं सैय्यद सुल्तान ने रसूलरजय की रचना की, जिसमें कुछ हिंदू देवी-देवताओं को भी स्थान दिया गया था। उसके शिष्यों ने सत्य काली विवादसंबाद की रचना की।

असमी

असम में वैष्णव मत का प्रसार शंकरदेव (1449-1560) के प्रभाव में हुआ। उनके शिष्य माधवदास ने भक्ति रत्नावली की रचना की, जिसमें वृंदावन में कृष्ण के जीवन और बचपन को वर्णित करने वाले कई ***बड़गीत*** संकलित हैं। राम सरस्वती ने कूचबिहार के अपने संरक्षक राजाओं के लिए *महाभारत* का असमी में अनुवाद किया। इसी प्रकार *भागवत्* और *विष्णु पुराण* को आधार बनाकर असमी में गोपाल चंद्र द्विज ने कृष्ण कथाओं की रचना की।

उड़िया

16वीं शताब्दी के दौरान भी उड़िया साहित्य संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित था। पौराणिक विषयों पर काव्य की रचना की जा रही थी। हमारे अध्ययन काल का उड़िया साहित्य श्री चैतन्य के वैष्णव मत से काफी प्रभावित था। सोलहवीं शताब्दी में धरणीधर मिश्र, वृंदावन दास (*रसबारिधि*) और त्रिलोचन दास ने जय देव की *गीत गोविंद* का उड़िया में अनुवाद (*गोविंद गीत*) किया।

बोध प्रश्न-4

1) सोलहवीं शताब्दी में अवधी के विकास का परीक्षण कीजिए।

....
....
....

2) ओरछा शासकों द्वारा ब्रजभाषा को प्रदान किए गए संरक्षण के विषय में संक्षेप में लिखिए।

....
....
....

3) चैतन्य पंथ के उदय तथा बंगाली साहित्य के विकास के बीच संबंधों की व्याख्या कीजिए।

....
....
....

18.7 सारांश

शेल्डन पोलॉक तर्क देते हैं कि सहस्राब्दी के बदलाव के साथ 'सार्वदेशिक' संस्कृत का स्पष्ट पतन हुआ तथा यह काल साहित्यिक संस्कृति के क्षेत्रीयकरण के लिए उल्लेखनीय है। लेकिन, ऑड्री ट्रश्के यह तर्क देती हैं कि संस्कृत का फलना-फूलना जारी रहा तथा सत्रहवीं शताब्दी तक इसे साम्राज्यिक तथा उप-साम्राज्यिक संरक्षण मिलता रहा, जबकि ब्रज ने 'सार्वदेशिक' चरित्र ग्रहण कर लिया तथा यह फ़ारसी-सुशिक्षितों के मध्य संपर्क भाषा बन गई। ब्रजभाषा साहित्य पर एलिसन बुश का कार्य यह संकेत देता है कि ब्रजभाषा का मुख्य भाषा के रूप में उदय सोलहवीं शताब्दी में शुरू हुआ तथा शीघ्र ही यह क्षेत्रीय 'सार्वदेशिक' भाषा के रूप में विकसित हो गई तथा इसने 'साहित्यिक' भाषा का दर्ज़ा हासिल कर लिया।

क्षेत्रीय साहित्यिक परम्पराओं की सीमाएँ अक्सर पारगम्य थीं तथा इनका प्रसार बंधी-बँधाई सीमाओं के पार हुआ। क्षेत्रीय-भाषा के विद्वानों ने केवल संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद का ही प्रयास नहीं किया बल्कि संस्कृत ग्रंथों के क्षेत्रीयकरण का प्रयास भी किया तथा इस प्रयास में वे अपनी विशिष्ट रचना-शैली गढ़ने में कामयाब हुए। अवधी तथा ब्रजभाषा क्षेत्रीय भाषाओं में सर्वप्रमुख थीं जिन्होंने अपनी विशिष्ट शैली विकसित करने में सफलता पायी और इस प्रकार 'सार्वदेशिक' साहित्यिक परम्परा का दर्ज़ा प्राप्त किया।

18.8 शब्दावली

आख्यान	शब्दशः कहना/बखान करना। ये कथा रूप में धार्मिक निर्देश हैं, जिन्हें गायन और अभिनय के साथ गूँथा जाता है; जिसे कवि-श्रेष्ठ नरसिंह मेहता ने गुजरात में लोकप्रिय बनाया था
अलंकार शास्त्र	अलंकारों की निर्देशिका
बड़गीत/बोरगीत	शब्दशः 'पारलौकिक गीत'। यह मुख्यतः शंकरदेव तथा माधवदेव के गीतों का संग्रह है
चरित	जीवनी
कविकुल	समान विरासत तथा रचना.शैली को साझा करने वाले कवि समुदाय
मुक्तक	स्वतंत्र रूप से लिखे गए छंद; *मुक्तक* सामान्यतः किसी दीर्घ आख्यान का हिस्सा नहीं थे
नगर शोभा/नगर वर्णन	शहर का वर्णन
नायिकाभेद	नायिका के प्रकारों का वर्णन
पदावली	शब्दशः 'पाँव'; छंदबद्ध रचनाएँ, ईश्वर की प्रशंसा में रचित; भक्ति साहित्य से संबंधित
प्रभातीय	प्रातःकाल गाए जाने वाले भक्ति गीत
रासो	वीर रस की गाथाएँ
रीति (काव्य)	शाब्दिक रूप से काव्य की एक पद्धति; ऐसी कविता जिसमें संस्कृत काव्य-शास्त्र के हिसाब से प्राथमिक अवधारणाओं – रस-(भाव), *नायिकाभेद* (नायिकाओं के प्रकारों का वर्णन), *अलंकार* (काव्य के अलंकारिक-तत्व)– को परिभाषित तथा उनकी व्याख्या की जाती है। कवियों ने संस्कृत काव्य विधाओं को क्षेत्रीय साहित्यिक संस्कृति के हिसाब से ढाला। *रीति* काव्य में श्रृंगार पर विशेष बल दिया गया था
शहरआशोब	शाब्दिक रूप से शहर के विनाश के रुदन में रचित कविता; व्यंग्यात्मक कविता जिसमें शहर का वर्णन उस काल में आम सामाजिक तथा राजनीतिक बुराइयों को उद्‌घाटित करते हुए किया जाता है
श्रृंगार रस	कामोद्दीपक भाव/सौंदर्यपरक प्रेम
स्मार्ता	परम्परानिष्ठ वैष्णव; इसमें केवल द्विज वर्ण ही शामिल थे
वतन जागीर	स्वायत्त सरदारों को अपने *वतन*/पितृभूमि में प्रदत्त *जागीर*

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. देखें उप-भाग 18.2.1
2. देखें उप-भाग 18.2.2
3. देखें उप-भाग 18.2.3

बोध प्रश्न-2

1. देखें भाग 18.3

2. देखें उप-भाग 18.3.2
3. देखें उप-भाग 18.3.3
4. देखें उप-भाग 18.3.5

बोध प्रश्न-3

1. देखें उप-भाग 18.5.1
2. देखें उप-भाग 18.5.2

बोध प्रश्न-4

1. देखें उप-भाग 18.6.1
2. देखें उप-भाग 18.6.2
3. देखें उप-भाग 18.6.3

18.10 संदर्भ ग्रंथ

ब्रॉयन, टॉमस डे एवं एलिसन बुश, (संपा.) (2014) *कल्चर एँड सर्क्युलेशनः लिटेरेचर इन मोशन इन अर्ली मॉडर्न इंडिया* (लाइडनः ब्रिल).

बुश, एलिसन, (2014) 'पोयट्री इन मोशनः लिटेरेरी सर्क्युलेशन इन मुग़ल इंडिया', ब्रॉयन, टॉमस डे एँड एलिसन बुश, (संपा.) (2014) कल्चर एँड सर्क्युलेशनः *लिटेरेचर इन मोशन इन अर्ली मॉडर्न इंडिया* (लाईडेनः ब्रिल).

बुश, एलिसन, (2011) *पोयट्री ऑफ़ किंग्सः द क्लासिकल हिंदी लिटेरेचर ऑफ़ मुग़ल इंडिया* (आक्सफ़र्डः आक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

बुश, एलिसन, (2009) *ब्रज बियाँड ब्रजः क्लासिकल हिंदी इन द मुग़ल वर्ल्ड,* ओकेज़नल पब्लिकेशन .12 (नई दिल्लीः इंडिया इंटरनेशनल सेंटर).

लेफ़ेव्र, कोरिन, (2014) 'द कोर्ट ऑफ़ अब्दुर रहीम ख़ान-ए ख़ानान एज़ अ ब्रिज़ बिट्वीन ईरानियन एंड इंडियन कल्चर', ब्रॉयन, टॉमस डे एवं एलिसन बुश, (संपा) (2014) *कल्चर एँड सर्क्युलेशन-लिटेरेचर इन मोशन इन अर्ली मॉडर्न इंडिया* (लाइडेनः ब्रिल).

पोलॉक, शेल्डन (ग्रीष्म, 1998) 'इंडिया इन द वनक्यिुलर मिलेनियमः लिटरेरी कल्चर एंड पॉलिटी, 1000-1500', *डेडालूस*, भाग 127, नं. 3, पृ. 41.74.

पोलॉक, शेल्डन, (फ़रवरी, 1998) 'द कॉस्मोपॉलिटन वर्नाक्युलर', *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़*, भाग 57, न. 1, पृ. 6.37.

ट्रश्के, ऑड्री (2016) *कल्चर ऑफ़ एनकाउंटरः संस्कृत एट द मुग़ल कोर्ट* (गुड़गाँवः पेंगुइन बुक्स).

18.11 शैक्षणिक वीडियो सुझाव

लैंगवेज एडं लिटरेचर अंडर द मुगल्स-I
https://www.youtube.com/watch?v=Qa8L7LrgcRo

लैंगवेज एडं लिटरेचर अंडर द मुगल्स-II
https://www.youtube.com/watch?v=4OdO3XDxqIk

रोल ऑफ हिन्दुस्तानी एंड इट्स लिटरेटी वर्ज़नः रेख्ता अंडर द मुगल्स
https://www.youtube.com/watch?v=eG4YxRh0k40